ओ३म्

गोवर्द्धन-ज्योति

(मन्त्र-शतक)

द्वितीय रश्मि



आचार्य गोवर्द्धन शास्त्री की पुण्य तिथि १६ मार्च १९८३ पर संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के आर्थिक सौजन्य से 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' की ओर से स्वाध्याय प्रेमियों के कर-कमलों में सादर सस्नेह भेंट—

ओ३म्

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

असतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्मामृतंगमय

गोवर्द्धन–ज्योति

(मन्त्र–शतक)

संकलन कर्ता

प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी

प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्री प्रो० गोवर्द्धन जी शास्त्री एम. ए. एम. ओ. एल. की पुण्य स्मृति में 'गोवर्द्धन–ज्योति' शतक के प्रकाशनार्थ 'संवड़ विद्या सभा ट्रस्ट' जयपुर ने सहयोग के रूप में १००० रु० 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' को प्रदान किये ।

प्रकाशक—

श्रद्धा साहित्य प्रकाशन

कर्म कुटीर आर्यनगर ज्वालापुर, जिला सहारनपुर

समर्पण

ये हैं वे ब्रह्मचारी जिन के प्रति यह "शतक" समर्पित है और जिन्होंने इसे बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है।

क्रमसं०	नाम	पिता/संरक्षक का नाम	जिला
दशम कक्षा—			
१	नरेन्द्र कुमार	सर्वश्री बिहारीलाल जी	गंगानगर (राज०)
२	राधा मोहन	ओमप्रकाश जी	इटावा
३	सहवीरसिंह	उदयवीरसिंह जी	,,
४	भूपेन्द्र सिंह	अमोलकराम जी	शिमला
५	मुरलीधरन	टी. के. वी. रमनजी	वाराणसी
नवम कक्षा—			
६	अजय कुमार	हीरालाल जी	गोंडा
७	प्रताप सिंह	प्यारसिंह मुसाफिर	विलासपुर (हि. प्र.)
८	पूरणचन्द्र	बालकृष्ण जी	नैनीताल
९	भीमसिंह	खिलाड़ीसिंह जी	मेरठ
१०	हरिशंकर	गिरीश चन्द्र जी	पिथौरागढ़
११	प्रदीपकुमार	रामधनीशाह जी	नवादा (बिहार)
१२	अनिल कुमार	अतरसिंहजी	मुजफ्फरनगर
१३	वीरेन्द्र प्रताप	राम प्यारेसिंह जी	गोरखपुर
१४	निगमपाल	नानकसिंह जी	मुरादाबाद
१५	अनीत कुमार	रामप्रसाद जी	रामपुर
१६	सुनीत कुमार	रामप्रसाद जी	रामपुर
अष्टम कक्षा—			
१७	संजय कुमार	वीरेन्द्र प्रसाद जी	फरीदाबाद
१८	मदन मोहन	देवीप्रसाद जी	कानपुर
१९	ज्ञानेन्द्र कुमार	शान्तिस्वरूप जी	दिल्ली
२०	संजय कुमार	श्री विजयकुमार जी	बैतूल

क्रसं०	नाम	पिता/संरक्षक का नाम	जिला
२१	सीताराम	सर्वश्री रामाधारसिंह जी	आरा
२२	हरिओ३म्	आज्ञाराम जी	फरुखाबाद
२३	आलोक कुमार	धर्मवीरसिंह जी	मुरादाबाद
२४	भगतसिंह	रामचन्द्र जी	करनाल
२५	विपिन कुमार	श्रीकृष्ण जी	मेरठ
२६	प्रदीप कुमार	हरिहरप्रसाद जी	वाराणसी
२७	चन्द्रशेखर	सुरेशचन्द्र जी	प० चम्पारण

सप्तम कक्षा—

क्रसं०	नाम	पिता/संरक्षक का नाम	जिला
२८	विजय कुमार	सुखवीर सिंह	वालाघाट
२९	भूपेश कुमार	सुभाषचन्द्र जी	एटा
३०	जितेन्द्र कुमार	जयदेव जी	बिजनौर
३१	रथिन कुमार	वीरेन्द्रनाथ जी	दिल्ली
३२	बिथिन कुमार	वीरेन्द्रनाथ जी	दिल्ली
३३	राजेश्वर कुमार	नागेन्द्र प्रसाद जी	प० चम्पारण
३४	नथमल	भोलाराम जी	नेपाल
३५	हरिओ३म्	बद्रीप्रसाद जी	मिर्जापुर
३६	धीरेन्द्र कुमार	शेरसिंह जी	बरेली
३७	देवेन्द्र कुमार	धर्मपाल सिंह जी	लुधियाना
३८	जितेन्द्र कुमार	मामचन्द जी	मुजफ्फरनगर
३९	प्रदीपकुमार	जगदीश प्रसाद जी	इटावा
४०	अजयकुमार	हरिपालसिंह जी	मुजफ्फरनगर
४१	राजेन्द्र कुमार	जगन्नाथ प्रसाद जी	वाराणसी
४२	मुन्नालाल	मोहनलाल जी	गोरखपुर
४३	मनोजकुमार	नन्दकिशोर जी	बदायूं
४४	अवधेश कुमार	राकेशकुमार जी	गोरखपुर

क्रसं०	नाम	पिता/संरक्षक का नाम	जिला
षष्ठ कक्षा—			
४५	जोगेन्द्रकुमार	सर्वश्री हरस्वरूप जी	दिल्ली
४६	मनजोत सिंह	हरस्वरूप जी	दिल्ली
४७	अतुल कुमार	सत्यप्रकाश जी	बाराबंकी
४८	रतिपाल सिंह	टीकाराम जी	मुरादाबाद
४९	हरिओ३म्	बिशम्बरदयाल जी	दिल्ली
५०	राजीवरंजन	सुरेन्द्र कुमार जी	पटना
५१	सुनीलकुमार	रामगोपाल सिंह जी	मुजफ्फरनगर
५२	कैलाशकुमार	जसवन्तसिंह जी	बदायूं
५३	रामकिशन	रामेश्वरदयाल जी	बरेली
५४	दीपक कुमार	श्रीमती वीणारानी जी	दिल्ली
५५	चरणसिंह	मूलचन्द्र जी	मुजफ्फरनगर
५६	पंकज कुमार	धर्मवीरसिंह जी	बिजनौर
५७	अखण्ड प्रताप	धर्मवीरसिंह जी	बिजनौर
५८	दिलीप कुमार	अशर्फी प्रसाद जी	मुंगेर
५९	विनोद कुमार	रामसिंह जी	देवरिया
६०	ओमप्रकाश	जयपाल सिंह जी	मुरादाबाद
६१	आदर्श कुमार	रामअवतार जी	बदायूं
६२	गौरीशंकर	रामबालक जी	नवादा
६३	लक्ष्मीकान्त	संकटाप्रसाद सेठ जी	मिर्जापुर
६४	देवेन्द्र कुमार	प्रकाशचन्द्र जी	दिल्ली
६५	दीपक कुमार	यज्ञमुनि जी	दिल्ली

भूमिका

गुरुकुल की यात्रा निरन्तर जारी है। शुरू शुरू में अबाध गति से बढ़ा, चढ़ा, चमका–परन्तु जैसे सभी संस्थाओं में होता है–थकावट, रुकावट, पथ-भटकाव-आदि। यज्ञस्थली युद्धस्थली बनी।

परमात्मा की कृपा अपार है। वही परीक्षा में डालता है–वही मार्गदर्शन करता है। अब गुरुकुल अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है।

अब गुरुकुल से पांच पत्रिकायें निकल रही हैं। लक्ष्य बोध रहे–इसका प्रतीक ध्रुव है। ध्रुव निश्चय का भी प्रतीक है। फिर है प्रहलाद। प्रहलाद ओजस्वी, तेजस्वी, अडिग, दृढ़ संकल्प, तरुणाई का प्रतीक है और फिर आर्य भट्ट। आर्य भट्ट वह यान है, वह साधन है जिस पर आरुढ़ होकर प्रहलाद ध्रुव की ओर चलता है बढ़ता है, वैदिक पथ का अनुसरण करते हुए गुरुकुल पत्रिका इस यात्रा की घोषणा करती है–दुन्दुभी बजाती है।

गुरुकुल आर्य भट्ट पर सवार है–प्रहलाद उसका सारथी है–ध्रुव उसका लक्ष्य है–वैदिक पथ उसका पथ है–गुरुकुल पत्रिका संजय की भूमिका निभाती है। गोवर्धन ज्योति पथ को जगमग करती है।

गोवर्धन ज्योति क्या है? यही न कि गोवर्धन पर्वत की शरण में आये सभी स्त्री पुरुष अपने अपने डंडे, अपनी अपनी उंगलियां उठायें और गोवर्धन को छत्रवत् धारण करे। तभी अति-वृष्टि से बचाव होगा।

प्रजातन्त्र में सभी प्रजा का कर्तव्य है कि अपना अपना धर्म पालन करे। गुरू अपने धर्म का पालन करे। राजपुरुष, प्रशासक अपने धर्म का पालन करें। शूद्र अपने धर्म का पालन करें, ब्रह्मचारी अपने धर्म का पालन करे। माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी, नागरिक, वानप्रस्थी, सन्यासी सभी अपने धर्म का पालन करें। बेचारी इन्दिरा गाँधी कहां तक सब काम करेगी ? क्या क्रिकेट का मैच जीतना भी उसी का काम है ? क्या हाकी का मैच जीतना भी उसी का काम है ?

हम तो अवतारवाद में विश्वास ही नहीं करते। कब तक हम किसी अवतार की, नेता की प्रतीक्षा करें ? आइये, अपने गुरु स्वयं बनें। अपनी दिव्याग्नि जलायें आत्मदीपोभव का सन्देश सुनें। अपनी अपनी जिम्मेवारी को समझें, निभावें तभी देशोत्थान होगा। इसी में सबका कल्याण है।

यदि हाथ अपना काम करना छोड़ दें, यदि पांव हड़ताल पर चले जाएं, यदि आँख या कान असहयोग कर बैठे तो शरीर का क्या होगा ? क्या कभी हमने यह सोचा है ?

आइये गोवर्धनधारी बनें यही गोवर्धन ज्योति का संदेश है।

मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि लगातार ३ वर्ष से प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को प्रतिदिन एक वेदमन्त्र अर्थसहित स्मरण कराने की साधना में लगे हुए हैं। उनका यह कार्य अद्वितीय और अनुकरणीय है। यदि विश्वविद्यालय के अन्य विद्वान अध्यापकगण भी इस प्रकार के कार्य हाथ में लें तो ब्रह्मचारियों को कितना लाभ हो इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

इसमें कोई भी शक नहीं कि जिन ब्रह्मचारियों ने प्रो० त्रिवेदी द्वारा अवतरित वेद सुधा का पान किया है, वे आयुपर्यन्त प्रो० त्रिवेदी को नहीं भूलेंगे। जो मन्त्रबोध उन्हें प्रो० त्रिवेदी के भगीरथ प्रयत्न से प्राप्त हुआ है, वह सदैव, विशेषकर जीवन की कठिन घड़ियों में उनका मार्गदर्शन करेगा। मैं समझता हूँ प्रो० त्रिवेदी को इससे अधिक दक्षिणा की आवश्यकता भी नहीं।

इसके साथ ही मैं ईश्वर भारद्वाज, आश्रमाध्यक्ष की निष्ठा और कर्मठता की भी सराहना करना चाहूँगा और यही चाहूँगा कि यह यज्ञ निरन्तर जारी रहे।

(बलभद्र कुमार हूजा)
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उ० प्र०)

२२ फरवरी, १९८३
गुरुकुल स्थापना दिवस

दो शब्द

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय श्री बलभद्र कुमार हूजा एवं आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सुरेश चन्द्र शास्त्री की प्रेरणा से प्रतिदिन प्रातःकाल संध्या-हवन के पश्चात् विद्यालयीय छात्रों को अर्थ सहित एक सुभाषित वेद मन्त्र याद कराने का कार्यक्रम अक्तूबर १९८० से चल रहा है। एक सौ वेद मन्त्र पूरे होने पर उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करा दिया जाता है। इसी क्रम में यह तीसरी पुस्तक है।

यह कहते हुए किञ्चिन्मात्र भी सङ्कोच नहीं कि मैं लौकिक संस्कृत साहित्य का तो एक सामान्य छात्र रहा हूँ परन्तु वैदिक साहित्य में मेरी कोई रुचि न थी। इस दिशा में मुझको प्रेरित करने का श्रेय श्री हूजा साहब को है। उन्होंने इस कार्यक्रम को गतिशील बनाने में सदैव रुचि दिखाई। मैं जब भी उनसे मिला, उन्होंने इसके सम्बन्ध में सदैव जानकारी प्राप्त की। मुझे इन वेद मन्त्रों को लिखने से जो आत्म-तुष्टि हुई, तदर्थ उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

इन वेद मन्त्रों को 'ऋक्-सूक्त-संग्रह,' 'वैदिक-विनय,' दयानन्द संस्थान नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित वेद आदि कई ग्रन्थों से सहायता लेकर संकलित किया गया है। मैं उनके रचयिताओं, मनीषियों एवं चिन्तकों का आभारी हूँ। इन वेदमन्त्रों के प्रकाशनार्थ श्री हूजा जी की सत्प्रेरणा से संघड विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' के माध्यम से प्रतिवर्ष एक सहस्र रुपये सहायता के रूप में प्रदान करता है, एतदर्थ ट्रस्ट को हार्दिक धन्यवाद।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य एवं उपकुलपति प्रो० रामप्रसाद वेदालङ्कार ने हमें सदैव उत्साहित किया है और इनके मुद्रण में बड़ा योगदान किया है, मैं उनके प्रति विनम्रता-

पूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ। मैं अपने वरिष्ठ सहयोगी प्रो० सदाशिव भगत (रीडर एवं अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन किये बिना नहीं रह सकता। श्री भगत जी नित्य प्रति प्रातःकाल मेरे साथ विद्यालयाश्रम जाते थे और वेद मन्त्रों को लिखने के समय अपनी उपस्थिति से छात्रों व हम सभी को उत्साहित करते थे।

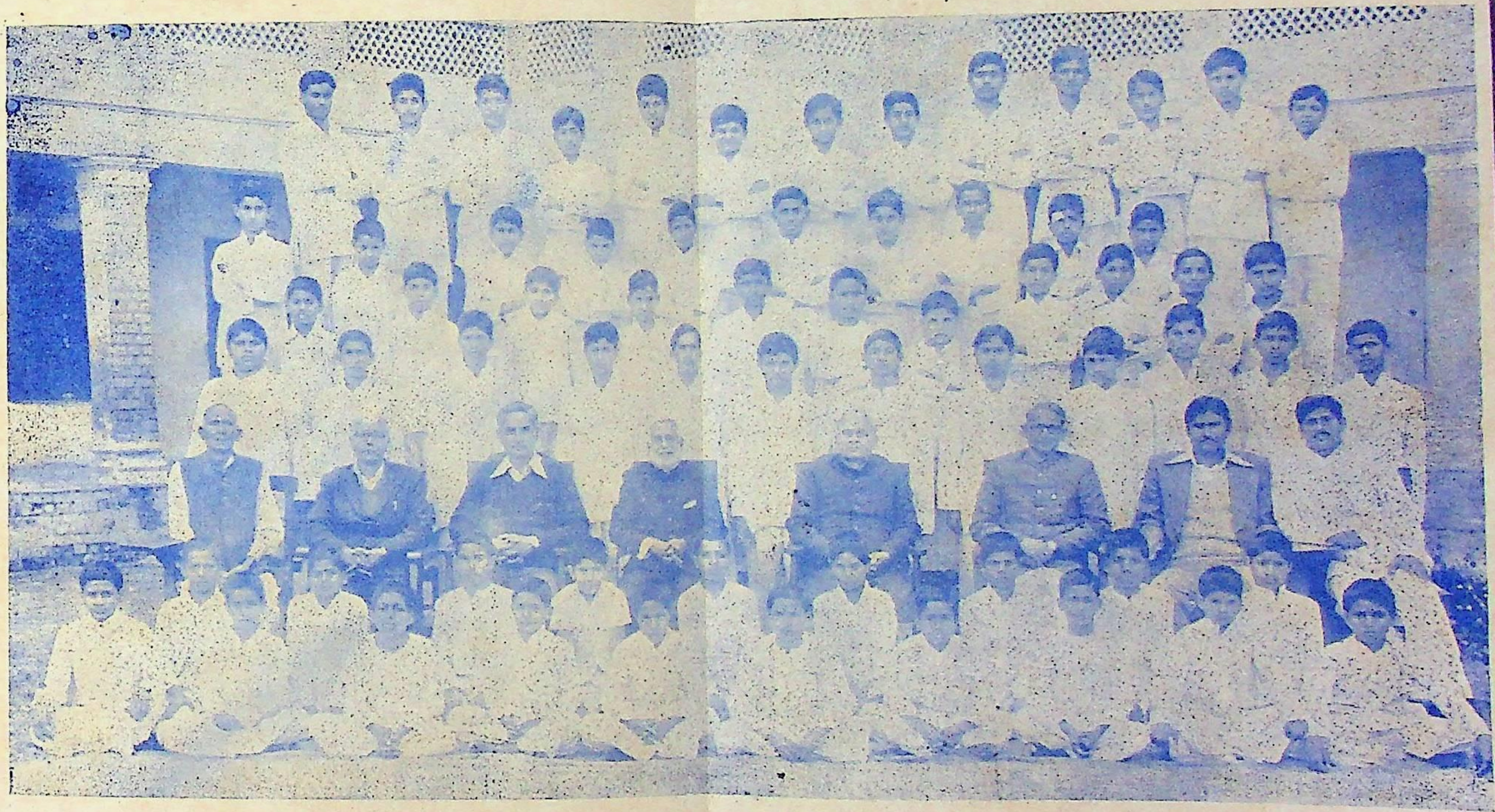
आश्रमाध्यक्ष श्री ईश्वर भारद्वाज ने छात्रों को वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराने तथा प्रूफ आदि देखने में बड़ी सहायता की है। स्वामी स्वात्मानन्द जी, पं० चन्द्रकेतु विद्यालङ्कार, श्री बुद्धसिंह जी व श्री अशोक माथुर जी ने समय-समय पर वांछित सहयोग दिय है। ये सभी महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

शक्ति प्रेस के संस्थापक स्व० ठाकुर संसारसिंह जी के सुपुत्र आयुर्वेद बृहस्पति, कविराज श्री योगेन्द्रपाल शास्त्री एवं पौत्र श्री यशवर्धन शास्त्री सम्पादक—"शक्ति सन्देश" साप्ताहिक अपने मुद्रणालय के समस्त कर्मचारियों सहित भूरिशः प्रशंसा के पात्र हैं, उन्होंने अत्यन्त अल्प समय में इसे छापकर तैयार किया है।

ये वेदमन्त्र अल्प व्यस्क छात्रों को वैदिक साहित्य का प्रारम्भिक सामान्य ज्ञान कराने के लिये संकलित किये गये हैं और उसी दृष्टि से उनका साधारण रूप से बोधगम्य अर्थ करने का प्रयास किया गया है।

एतद्विषयक यदि कोई त्रुटि अथवा स्खलन हो गया हो तो विद्वज्जन तदर्थ क्षमा करेंगे।

चन्द्रशेखर त्रिवेदी
(संकलन कर्ता) प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार



कुर्सी पर बाएं से---पं० चन्द्रकेतु विद्यालङ्कार, प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी (संकलन कर्ता), श्री देशराज शर्मा (सहायक मुख्याधिष्ठाता), श्री बलभद्र कुमार हूजा (कुलपति एवं मुख्याधिष्ठाता), श्री वीरेन्द्र एम० ए० (कुलाधिपति एवं प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब), डॉ० जबरसिंह सेंगर (कुलसचिव), डॉ० दीनानाथ शर्मा (मुख्याध्यापक), श्री ईश्वर भारद्वाज (आश्रमाध्यक्ष)

ओ३म्

गोवर्द्धन-ज्योति

[शतकम्]

(हिन्दी अनुवाद सहित चुने हुए वेद मन्त्र)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

यजु० ३६-३ ।।

अर्थ :—जो सभी का रक्षक, समस्त जगत् का प्राण, सभी दुःखों को दूर करने वाला, सब सुखों का दाता परमेश्वर है वह सर्वव्यापक एवं सबको उत्पन्न करने वाला है। सर्वश्रेष्ठ एवं ग्रहण करने योग्य शुद्ध स्वरूप दिव्य गुणों से युक्त देव का हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग से चलने के लिये प्रेरित करे।

—०—

(१)

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्
होतारं रत्न धातमम् ।

ऋ० १-१-१ ।।

अर्थ :—मैं अग्नि देवता की स्तुति करता हूँ। जो अग्नि यज्ञ का पुरोहित है (जैसे पुरोहित अपने यजमान के हित को अपने सामने रखता है वैसे ही अग्नि यज्ञ के द्वारा यजमान की कामनाओं की पूर्ति करता है।) तथा वह अग्नि दानादि गुणों से युक्त, देवताओं का होता एवं यज्ञ के फलस्वरूप रत्नों का अत्यधिक धारण करने वाला, देने अथवा पोषण करने वाला है।

—०—

(२)

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिर् ईड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ ऋ० १-१-२ ॥

अर्थ :—यह अग्नि प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत किया गया है और नवीन ऋषियों (विश्वामित्रादि) द्वारा भी अग्नि देवता की स्तुति की गई है। वही अग्नि देवताओं को इस यज्ञ में प्राप्त करावे।

—०—

(३)

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ऋ० १-१-३ ॥

अर्थ :—जो अग्नि होता द्वारा स्तुत है उस अग्नि से प्रतिदिन बढ़ते हुए मैं यशस्वी, पुत्र भृत्य आदि वीर पुरुषों से अत्यधिक युक्त धन को प्राप्त करता रहूँ।

—०—

(४)

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ॥

ऋ० १-१-७ ॥

अर्थ :—हे अग्निदेव ! हम यज्ञ करने वाले सदैव अहनिश एकाग्र बुद्धि से नमस्कार करते हुए तुमको प्राप्त करें ।

—०—

(५)

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव ।

सचस्वा नः स्वस्तये ।

ऋ० १-१-९

अर्थ :—हे अग्ने ! तू हमारे लिये शुभागमन वाला बन तथा हमारे कल्याण के लिये हमारे साथ संगति कर। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिये शुभकामनायें करने वाला एवं

कल्याण चाहने वाला होता है वैसे ही तू भी हमारा कल्याण चाहने वाला हो।

—०—

(६)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्

देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।

यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां

नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥

ऋ० २-१२-१ ॥

अर्थ :—हे असुरो! जो जन्मतः देवताओं में प्रधान, मनस्वियों में अग्रगणी, द्युतिमान् तथा वृत्रासुरादि का वध करके यज्ञ के देवताओं की रक्षा करता रहा है। जिसके शारीरिक बल से द्युलोक व पृथिवीलोक कांपते हैं। जो महती सेना से युक्त है, वस्तुतः वह इन्द्र है, मैं इन्द्र नही हूँ। (महाभारत की कथा के अनुसार गृत्समद ऋषि के यज्ञ में इन्द्र अकेले पहुँच गए दैत्यों ने उन्हें घेर लिया। इन्द्र गृत्समद ऋषि का रूप बनाकर यज्ञशाला से निकल गए। यज्ञशाला में बैठे वास्तविक गृत्समद ऋषि को ही इन्द्र समझकर दैत्य उसे मारने लगे। तब गृत्समद ने असली इन्द्र का परिचय देते हुए यह स्तुति की और भेद बताया।

—०—

(७)

यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः ।

तं दक्षः सचते कविः ॥

ऋ० १-१४-६१-१४ ॥

अर्थ :—जो मनुष्य परमेश्वर, विद्वान् तथा उत्तम औषध के साथ मित्रता करते हैं वे विद्या को प्राप्त होकर कभी दुःख भागी नहीं होते ।

—०—

(८)

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणो वधीः ॥

ऋ० १-२३-१७१-२ ॥

अर्थ :—जो लोग अपने बन्धु जनों को पीड़ा देते हैं या देने की इच्छा करते हैं वे सदैव पीड़ित रहते हैं । जो लोग अपने बन्धुजनों की रक्षा करते हैं वे समर्थ हैं और उनके सब काम बन जाते हैं । जो सभी का मन वचन और कर्म से उपकार करते हैं उनका अपकार कभी नहीं होता ।

—•—

(६)

त्वं राजेन्द्र ये च देवा

रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।

त्वं सत्पति र्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं

सत्यो वसवानः सहोदाः ।।

ऋ० १-२३-१७४-१ ।।

अर्थ :—हे परमैश्वर्यशाली आप वेद व सज्जनों के पालन कर्त्ता, परम प्रशंसित धनवान् हम लोगों को दुःखरूपी समुद्र से उतारने वाले हैं। आप सज्जनों में उत्तम, धन प्राप्ति कराने तथा बल देने वाले हैं। आप न्याय एवं विनय से युक्त हैं। अतएव मेघ सदृश आप हम मनुष्यों का पालन करें। साथ श्रेष्ठ गुण वाले धर्मात्मा विद्वानों की रक्षा करो।

सारांश यह कि राजा अथवा अधिकारी सत्यनिष्ठ, धर्मात्मा सत्पुरुष एवं विद्वान् लोगों को अपने निकट सम्पर्क में रखकर प्रजा पालन करे।

—०—

(१०)

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः
सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो
होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥
ऋ० १-७३-१ ॥

अर्थ :—विद्या धर्मानुष्ठान, विद्वान् पुरुषों का संग तथा उत्तम विचार के बिना किसी मनुष्य को विद्या एवं सुशिक्षा का साक्षात्कार तथा पदार्थों का ज्ञान नहीं होता और निरन्तर भ्रमणशील अतिथि विद्वानों के उपदेश के बिना कोई मनुष्य सन्देह रहित नहीं हो सकता। अतएव सभी लोगों को अच्छा आचरण करना चाहिये।

—०—

(११)

त्वं न सोम विश्वतो रक्षा राजन् अघायतः ।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥
ऋ० १-९१-८ ॥

अर्थ :—हे सोम ! हे राजन् ! तू हमें पाप चाहने वालों से चारों ओर से रक्षा कर। तुझ जैसे से मित्रता रखने वाला कभी नष्ट नहीं होता।

—०—

(१२)

नमः पुरा ते वरुणोत

नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।

त्वे हि कं पर्वते न

श्रितान्य प्रच्युतानि दूडभ व्रतानि ॥

ऋ० २-३-२८-८ ॥

अर्थ :—मनुष्य को चाहिये कि जो इस संसार में प्रशंसनीय, श्रेष्ठ एवं उदार पुरुष हों, उनके प्रति सदैव प्रिय वचन कहें तथा अनुकूल आचरण करें तथा उनके गुण, शील, कर्म व स्वभाव को अपने में ग्रहण करें।

—०—

(१३)

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां

सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघशंसो

बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

ऋग्वेद २-४-४२-३ ॥

अर्थ :—शुद्धाचरण करने वाले, सत्यवादी महात्मा जहां उपदेश करते हैं वहां चोर लम्पट व दुष्ट स्वयं नष्ट हो जाते हैं और सबको सुख प्राप्त होता है।

—o—

(१४)

न दक्षिणार्विचिकते न सव्या,
न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्याचिद वसवो धीर्याचिद्
युष्मानीतो अभयं ज्योति रश्याम् ॥
ऋ० २-२७-११ ॥

अर्थ :—हमारे दाएं-बाएं, उत्तर-पूर्व किसी भी दिशा में सुनिश्चित मार्ग नहीं दिखाई पड़ता । न तो हमें सामने दिखाई पड़ता है न पीछे । हमारी विवेक शक्ति बहुत अनुभव शून्य है । अतएव हे वासव आदित्यो ! आपके पथ-दीप ही हमें अभय दे सकेंगे ।

—o—

(१५)

अधा यथा नः पितरः परासः

प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।

शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः

क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ।।

ऋ० ४-१-२-१६ ॥

अर्थ :—जो राजा अथवा राजपुरुष (अधिकारी) प्रजा अथवा शासित वर्ग के पिता के समान व्यवहार करके, सत्य एवं न्याय को पुष्ट करते हुए अविद्या को दूर करके प्रजा (शासित) जनों को शिक्षा देते हैं वे पवित्र माने जाते हैं और सर्व साधारण लोग उनका आदर करते हैं।

—o—

(१६)

मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो

गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।

मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वे र्मा

सख्यु र्दक्षं रिपो भुजेम ।।

ऋ० ४-१-३-१३ ।।

अर्थ :—वस्तुत ऐसे लोगों को बुद्धिमान समझना चाहिये जो अन्याय एवं अधर्म से किसी की वस्तु नहीं लेते। किसी दुष्ट एवं हिंसक व्यक्ति का संग नहीं करते। धर्म एवं न्याय से प्राप्त धन का दुरुपयोग नहीं करते एवं शत्रु का कभी विश्वास नहीं करते। इस प्रकार के लोग सदैव आनन्द को प्राप्त करते हैं, कभी दुःखी नहीं रहते।

—०—

(१७)

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा
निधारयन्तो दुर्य्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्
षड्भिः पश्येरद्भुतां अर्य एवैः ।।
ऋ० ४-२-३-१२ ।।

अर्थ :—हे मनुष्यो! जो शिक्षक एवं उपदेशक विद्वान् पुरुष लोगों को पढ़ाते और उपदेश देते हैं उनका सदैव सम्मान करो ताकि लोगों पर उनका प्रभाव पड़े और वे उत्तम गुण, कर्म व स्वभाव वाले बन सकें।

—०—

(१८)

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं

कृणोतीर्यति रेणुं मघवा समोहम् ।

विभञ्ज नुरशनिमाँ इव

द्यौरुतस्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥

ऋ० ४-२-१७-१३ ॥

अर्थ :—राज्य (शासन) करने का अधिकारी वही है जिसे उत्तम तथा अधम पुरुष की पहचान हो और जो तदनुसार क्रमशः उनको समाहृत एवं दण्डित कर सके । जैसे यजमान विद्वान् पुरुष को यज्ञ कार्य में स्वीकार करके धन, द्रव्यादि देकर उसे संतुष्ट करता है वैसे ही राजा (अधिकारी) श्रेष्ठ जनों को अपना परामर्शदाता बनाता है इस प्रकार स्वयं ऐश्वर्य एवं आनन्द का भोग करता है तथा दूसरों को भी आनन्दित करता है ।

—०—

(१९)

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि ।

भूरिदा असि वृत्रहन् ॥

ऋ० ४-३-३२ १९ ॥

अर्थ :—हे शत्रुओं को नाश करने वाले परमात्मन् ! तुम अत्यन्त दानशील हो। हम लोग स्वर्ण निर्मित घटों के दश संख्या युक्त समूह को प्राप्त होवें।

सारांश यह है कि जो व्यक्ति दानशील होते हैं उनके सहस्त्रों मित्र हो जाते हैं। पराए भी अपने हो जाते हैं। ठीक ही कहा गया है—

दानेन भूतानि वशीभवन्ति,
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-
र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥

अतः मनुष्य को उदारचेता एवं दानशील होना चाहिये।

—०—

(२०)

ये देवासो अभवता सुकृत्या
श्येना इवेदधि दिवि निषेद।
ते रत्नं धात शवसो न पातः
सौधन्वना अभवतामृतासः॥

ऋ० ४-४-३५-८॥

अर्थ :—जो श्येन (बाज) पक्षी के समान अपने श्रेष्ठ कर्म व पुरुषार्थ से ऊपर उठते हैं, अपनी विद्वता एवं धर्माचरण द्वारा अन्य लोगों को भी अपने समान ऊंचा उठाते हैं, वे लोग नाना प्रकार के ऐश्वर्य जनित सुखों का भोग करते अन्त में मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं।

—०—

(२१)

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो
महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तु विजातो रवेणा
वि सप्तरश्मि रधमत्तमांसि ॥
ऋ० ४-५-५०-४ ॥

अर्थ :—जैसे सूर्य में सात प्रकार के रूप वाले तत्व मिले रहते हैं और किरणों के द्वारा सूर्य सबसे रसों को ग्रहण करता है, वैसे ही पांच ज्ञानेन्द्रियों, मन और सातवें आत्मा से सब विद्याओं को ग्रहण करके पढ़ाने एवं उपदेश करने से लोगों का अज्ञान दूर होता है और उनमें ज्ञान की वृद्धि होती है। अतएव अज्ञान को दूर कर ज्ञान का प्रकाश करना चाहिये। क्योंकि 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' ज्ञान के बिना मनुष्य को मोक्ष भी नहीं

प्राप्त होता । 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अतः मनुष्य को ज्ञानार्जन करना कराना चाहिये ।

—०—

(२२)

यो जागार तमृचः कामयन्ते,
यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह,
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥
ऋ० ५-४४-१४ ॥

अर्थ :—जो जागता है उसे ऋचाएं चाहती हैं । जो जागता है उसे ही साम (स्तुति गान) प्राप्त होते हैं जो जागता है उसके सामनें आकर यह सोम (भोग्य संसार) कहता है 'मैं तेरा हूँ । तेरी मित्रता में ही मेरा निवास है । तेरे सख्य के लिये मैं सदा नियत स्थान पर उपस्थित हूँ ।'

—०—

(२३)

अक्षो न चक्र्योः शूर
बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया
व्यू इतयोरुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥
ऋ० ८-३-२४-३ ॥

अर्थ :--जैसे पहिए धुरी के चारों ओर घूमते हैं और पहिया गतिशील रहता है वैसे ही सूर्य के चारों ओर सम्पूर्ण भूगोल घूमते हैं तथा उसी प्रकार न्याय का आश्रय लेकर समस्त प्रजाएं चलती हैं अर्थात् न्याय का मार्ग सनातन है न्याय युक्त पथ पर चलने वाले को कभी कष्ट नहीं होता। अतः न्याय का मार्ग कभी नहीं छोड़ना चाहिये। कहा गया है—

'न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥'

—०—

(२४)

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव

इन्द्रमवकर्शयन्ति

वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः

स्तोमेभिरुक्थैञ्च शस्यमाना ॥

ऋ० ६-३-२४-७ ॥

अर्थ :—वही विद्वान् सदा वृद्धि को प्राप्त होता है जो सभी लोगों को बुद्धिमान् विद्वान्, भद्र, सुशील एवं धर्माचरण करने वाला बनाता है और जो निर्विकार जन्म, मरण एवं वृद्धावस्था से परे, दोषरहित परमात्मा की उपासना करता है। ऐसे व्यक्ति धन्य हैं और यही प्रशंसा के पात्र हैं।

—०—

(२५)

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो

नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।

देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च

ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिस्सह ॥

ऋ० ६-३-२८-३ ॥

अर्थ :--हे मनुष्यो ! सबके लिये अधिक सुख करने, कभी न नष्ट होने वाला, निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाला और चोर आदि से न हरण किया जाने वाला विद्या धन ही है । इस धन को न राजा ले सकता है, न शत्रु ले सकता है । जैसा कि उचित ही कहा गया है—

न चौर हार्यं न च राजहार्यं

न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।

व्यये कृते वर्धत एव नित्यं

विद्याधनं सर्वधन प्रधानम् ॥

—०—

(२६)

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं

हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।

ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं

स्वस्तिर्नो मघवा धात्विन्द्रः ॥

ऋ० ६-४७-११ ॥

अर्थ :—पालन करने वाले इन्द्र को, रक्षा करने वाले इन्द्र को, प्रत्येक संग्राम में सुख से पुकारने योग्य पराक्रमी इन्द्र को तथा उस सर्वशक्तिमान् इन्द्र को जिसे असंख्य सत्पुरुषों ने समय-समय पर पुकारा है उस इन्द्र को मैं भी आह्वान करता हूँ। वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र हमारा कल्याण करे।

—०—

(२७)

अपां मध्ये तस्थिवान्सं तृष्णाऽविदत् जरितारम् ।

मृडा सुक्षत्र मृडय ॥

ऋ० ७-८९-४ ॥

अर्थ :—मुझ स्तोता को पानी के बीच बैठे हुए भी प्यास लगी है। हे शुभ शक्ति वाले ! मुझे सुखी कर, सुखी कर। इस

मन्त्र में ईश्वर के सर्वव्यापकत्व एवं मनुष्य की उसके विषय में अज्ञानता को द्योतित किया गया है।

—०—

(२८)

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां न किरा भिनत्।
अरावा चन मर्त्यः ॥
ऋ० ८-२८-४ ॥

अर्थ :—जो व्यक्ति अपने पीछे यश, कीर्ति तथा कोई चिरस्थायी वस्तु नहीं छोड़ता, वही मरणधर्मा है। जो यश अर्जित कर जीवन व्यतीत करता है, वह देव है। मनुष्यों को चाहिये कि वह इस प्रकार यशस्वी बनकर देवत्व प्राप्त करें। रघुवंश में कालिदास ने कहा है—

अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थात्
यशोधनानां हि यशो गरीयः।

—०—

(२६)

यदद्य सूर्य उद्यति

प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।

यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो

यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥

ऋ० ८-२७-१६ ॥

अर्थ :—शक्ति अथवा धन वह है जिससे प्रजा को उत्तम लाभ मिले और जनसाधारण का कल्याण हो। किसी विशेष स्थान, नियत तिथि, समय या विशिष्ट पात्र का विचार नहीं करना चाहिये। उपकार का कोई समय निश्चित नहीं। अतएव मनसा वाचा कर्मणा मनुष्य को परोपकार के लिये प्रतिक्षण तत्पर रहना चाहिये।

—०—

(३०)

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च

ब्रह्मदिन्द्रस्य चाकनत् ।

ऋ० ८-३१-१ ॥

अर्थ :—जो स्वयं आदान–प्रदान युक्त सत्कर्म करता है, जो यज्ञ करता है, जो किसी पदार्थ आदि को उत्पन्न करता है, जो अच्छे संस्कार अपनाता है, उसे परब्रह्म परमात्मा प्यार करता है अर्थात् कर्त्तव्य परायण व्यक्ति को ईश्वर सदैव सुखी रखता है।

—o—

(३१)

यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषुश्रितः ।

विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ।।

ऋ० ८-३३-६ ।।

अर्थ :—साहसी, चाटुकारों अथवा वञ्चक एवं स्वार्थी लोगों से न घिरने वाला पुरुषार्थी तथा यशस्वी व्यक्ति (अधिकारी) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, अनेक लोगों से प्रशंसित होता है। ऐसा समर्थ कर्तव्यपरायण अधिकारो भूमि वाणी एवं गौ के समान फल देने वाला होता है। अर्थात् ऐसा ही अधिकारी यश प्राप्त करता है, दूसरा नहीं।

—o—

(३२)

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्त्रिणम् ।

अग्ने वीरवतीमिषम् ।।

ऋ० ८-४३-१५ ।।

अर्थ :—हे परमात्मन् ! वह तू मेधावी जन को तथा ज्ञान विज्ञान दाता को अनन्त प्रकार की समृद्धि प्रदान करे। उसे वीर पुत्र व पौत्रादि से युक्त करके उत्तम जीविका प्रदान करो।

सारांश यह है कि परमात्मा उसे ही सर्वथा सम्पन्न रखता है जो परिश्रमी होता है और धन अथवा ज्ञान अर्जित करके दूसरों का उपकार करता है।

—o—

(३३)

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।

यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ।।

ऋ० १-२३-२२ ।।

अर्थ :—जल देवता हमारे शारीरिक मल को दूर करें और जो कुछ मेरे भीतर तमोगुणी भाव उत्पन्न हों अर्थात् मैं कोई पापकर्म करूं, उन्हें भी दूर करें। यदि मैं किसी से द्रोह अथवा क्रोध करूं या असत्य व्यवहार करूं, यह सब जल देवता दूर करें।

सारांश यह है कि जैसे जल मानव शरीर के मल को दूर करता है उसी प्रकार आप्त पुरुषों का सत्संग हमारी आन्तरिक मलिनता को दूर करता है। अतएव सत्सङ्ग करना परम धर्म है। ठीक ही कहा गया है—

—०—

(३४)

'सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति'

त्रातारो देवा अधिवोचतानो

मा नः निद्रा ईशत मोत जल्पिः।

वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः

सुवीरासो विदथमावदेम।

ऋ० ८-४८-१४ ॥

अर्थ :—हे रक्षक देवो ! हमसे बात करो, हमें आदेश दो। हम कभी निद्रा व आलस्य के वशीभूत न हों और न व्यर्थ बोलने की इच्छा हमारे भीतर बलवती हो। हम सदैव सोम के प्रिय होते हुए तथा श्रेष्ठ वीर होते हुए ज्ञान को फैलाते रहें।

—०—

(३५.

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मधवा पुरूवसु गोरश्वस्य प्रदातु नः ।।
ऋ० ८-५२-५ ।।

अर्थ :—जो प्रभु हमें ऐश्वर्य प्रदान करता है, वही हमारा पालनकर्ता है, नितान्त तेजस्वी है जो अभावग्रस्त को भी ऐश्वर्यशाली बना देता है। साथ ही अगन्तव्य मार्ग पर चलने वाले पापी के प्रति वह भयानक रूप धारण करता है। सभी को व्यवस्थित करने वाला स्वयं ऐश्वर्य युक्त वह परमात्मा हमें गौ, अश्व धन आदि प्रदान कर सर्वथा सम्पन्न बनावे।

—०—

(३६)

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्यो मुक्षीय मामृतात् ।।
ऋ० ६-५६-१२ ।।

अर्थ :—सौन्दर्ययुक्त, पुष्टिवर्धन करने वाले संसार के तीनों लोकों के अधिद्रष्टा रूप माता का हम यजन करते हैं। जैसे लता बन्धन से पका हुआ कर्कटीफल स्वयमेव पृथक् हो जाता है वैसे ही मरते हुए हम मृत्यु भय से मुक्त हो जायें, अमृत से कभी नहीं।

—०—

(३७)

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणां यन्तु हरयः ।

श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥

ऋ० ६-१०६-१ ॥

अर्थ :—ज्ञान आदि गुण जो प्रकाशस्वरूप हैं, जो सर्वत्र विद्यमान हैं, जो उपासना द्वारा साक्षात्कार के योग्य है, जो सब दुःखों को दूर करने वाले तथा मोक्ष प्रदायक है, वे परमात्मा के सब गुण, उद्योगी व कर्मठ व्यक्ति को स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। अतएव जीवन में उद्योग करना चाहिये। कहा गया है—

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः'

—०—

(३८)

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अतिद्विषः ॥

ऋ० १०-१२६-१ ॥

अर्थ :—उस व्यक्ति को रोग, पाप एवं दुराचार का फल नहीं प्राप्त होता, जिसको सौभाग्यवश प्रेम से प्राप्त देवता विद्वान्

तथा ईश्वर की नियामक शक्ति, ज्ञानमयी शक्ति एवं दण्डदायिनी शक्ति पापाचरण रूपी शत्रु से पृथक् ले जाते हैं।

अर्थात् ईश्वर की कृपा एवं सत्सङ्ग मनुष्यों की सब प्रकार से सभी क्लेशों से रक्षा करता है इसलिये ईश्वर में विश्वास व आस्था तथा सत्सङ्ग में रूचि रखनी चाहिये।

—०—

(३६)

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।

अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥

ऋ० १-१७६-४ ॥

अर्थ :—राजा को चाहिये कि जो आलसी लोग हैं, उन्हें दण्डित करे। जैसे विद्वान् अपने सद्व्यवहार से सबको सुख प्रदान करता है, वैसे ही राजा अपनी सामर्थ्य के अनुसार सबको सुख पहुँचावे।

—०—

(४०)

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत

द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

आप्यायमानाः प्रजयाधनेन

शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियासः ॥

ऋ० १०-१८-२ ॥

अर्थ :—हे मनुष्यों ! तुम मृत्यु के पैर उखाड़ते हुए आगे बढ़ोगे तभी दीर्घायु प्राप्त करोगे। अर्थात् निडर होकर कार्य करोगे, यश मिलेगा और यश कभी क्षीण नहीं होता। तभी प्रजा और धन से भरपूर रहोगे। किन्तु इसके लिए तुम शुद्ध, पवित्र और यज्ञमय ज़ीवन बिताओ।

—०—

(४१)

न देवानामतिव्रतं शतात्मा च न जीवति ।

तथायुजा वि वावृते ॥

ऋ० १०-३३-६ ॥

अर्थ :—देव शक्तियों के विरोध में रहने वाला शतात्मा भी नष्ट हो जाता है अर्थात् यदि वह प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करेगा तो उसे कठिनतम दण्ड मिलेगा और जीवन से हाथ धो बैठेगा।

—o—

(४२)

सहस्रशीर्षा: पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

ऋ० १०-९०-१ ॥

अर्थ :—विराट् पुरुष अनन्त सिरों वाला है अर्थात् जड़ चेतन एवं सर्वत्र व्याप्त होने के कारण सभी प्राणियों के सिर उसके सिर हैं। इसी प्रकार सहस्र नेत्रोंवाला है। सहस्रों पैरों वाला है। वह ब्रह्माण्ड को सब ओर से घेर कर केवल अंगुली परिमित स्थान को ब्रह्माण्ड से बाहर व्याप्त करके स्थित है अर्थात् वह परमपुरुष इस ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर व्याप्त है।

—o—

(४३)

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

ऋ० १०-९०-२ ॥

अर्थ :—यह जो कुछ भी दृश्यमान जगत् है वह सब पुरुष ही है अर्थात् परब्रह्म परमात्मा चित् और अचित् सब में विद्यमान है। जो अतीत और भविष्यत् संसार है वह भी पुरुष ही है। जिस प्रकार वर्तमान सृष्टि में रहने वाले प्राणी उस विराट् पुरुष के अंश हैं वैसे ही भूत में भी थे और भविष्य में भी होंगे। और यह देवताओं का स्वामी है जिससे प्राणियों के भोग के कारण इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को वह विराट् पुरुष प्राप्त होता है।

—०—

(४४)

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः ।

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

ऋ० १०-९०-३ ॥

अर्थ :—भूत भविष्य एवं वर्तमान रूप में जितना भी जगत् है, वह इतना बड़ा सारा ही इस विराट् पुरुष का सामर्थ्य विशेष है। विराट् पुरुष तो इस सामर्थ्य से भी अत्यधिक है। सारे प्राणी

इस पुरुष के चौथे अंश के रूप में हैं। इसके शेष तीन अंश विनाश रहित होते हुए स्वप्रकाशस्वरूप स्थित हैं।

वैसे परमात्मा का रूप अगम्य है वह जाना नहीं जा सकता तथापि तदर्थ यह कल्पना मात्र है।

—०—

(४५)

त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥
ऋ० १०-९०-४ ॥

अर्थ :—यह संसार रहित तीन पैरों वाला पुरुष इस अज्ञान के संसार से परे है। इस परमात्मा का एक अंश इस संसार में सृष्टि एवं प्रलय के द्वारा बार-बार आता-जाता रहता है। तत्पश्चात् सर्वत्र व्याप्त होते हुए वह विराट् पुरुष खाने वाले चेतन प्राणी और न खाने वाले अचेतन (पर्वत, नदी आदि) दोनों प्रकार के जगत् को लक्षित करके व्याप्त है।

—०—

(६४)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

ऋ० १०-९०-१२ ॥

अर्थ :—इस प्रजापति का ब्राह्मणत्व विशिष्ट पुरुष मुख से उत्पन्न हुआ । क्षत्रिय वर्ग वाला पुरुष क्षत्रिय बाहु से उत्पन्न हुआ इस प्रजापति का ऊरू (जंघा) के समान कार्यशील वैश्य जाति का पुरुष उत्पन्न हुआ । दोनों पैरों से शूद्र जाति वाला पुरुष उत्पन्न हुआ ।

सारांश यह कि सभी वर्ण उस परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं अतः सभी समान हैं । यह मन्त्र समाज चातुर्वण्य व्यवस्था का सुन्दर प्रतीक है ।

—•—

(४७)

चन्द्रमा मनसो जातश् चक्षोः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥

ऋ० १०-९०-१३ ॥

अर्थ :—इसी प्रकार ब्रह्म के संकल्प से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ । आँख से सूर्य उत्पन्न हुआ । मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए तथा उसके प्राणवायु से पवन की उत्पत्ति हुई ।

—०—

(४८)

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो: द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् ॥

ऋ० १०-६०-१४ ॥

अर्थ :—प्रजापति की नाभि से अन्तरिक्ष बना । शिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ । दोनों पैरों से भूमि उत्पन्न हुई तथा कानों से दिशाओं को बनाया । इस प्रकार विविध लोकों की रचना की गई ।

—०—

(४९)

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि

न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।

अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य

नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥

ऋ० १०-३४-३ ॥

अर्थ :—जुआरी की सास अपनी कन्या के दुःखी रहने के कारण अपने दामाद से द्वेष करती है । उसकी पत्नी भी उससे विरक्त हो जाती है । पैसा मांगने पर किसी को भी अपने लिये धन देकर सुखी करने वाला नहीं पाता । इस प्रकार बुद्धिपूर्वक विचार करने पर मैं, बहुमूल्यवृद्ध घोड़े के समान जुआरी होने का सुख नहीं पाता हूँ ।

अर्थात् जैसे बहुमूल्य घोड़ा बूढ़ा हो जाने पर बेकदरी का पात्र हो जाता है, वैसे ही मैं (जुआरी) भी सुखी नहीं हूँ क्योंकि सभी लोग मेरा अनादर करते हैं।

—०—

(५०)

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो
निकृत्वानस्तपना स्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो
मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥
ऋ० १०-३४-७ ॥

अर्थ :—द्यूतक्रीड़ा बहुत ही बुरा व्यसन है। जो व्यक्ति जुए में हारता है उसे तो जुए के पासे पीड़ा देते ही हैं, जो जीतता है उसे भी पीड़ा पहुँचाते हैं अर्थात् उसे भी शान्ति नहीं मिलती। जुए के ये पासे मधुर स्वाद वाले विषाक्त अन्न के समान हैं। अतएव जुआ कभी नहीं खेलना चाहिये।

—०—

(५१)

त्रिपञ्चाशः क्रीडति व्रात

एषां देव इव सविता सत्यधर्मा ।

उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्त

राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥

ऋ० १०-३४-८ ॥

अर्थ :—जुए के तिरपन पासों के इस समूह का प्रभाव सूर्य के प्रकाश के समान चतुर्दिक् फैलता है। ये पासे भयङ्कर क्रोध के समक्ष भो नहीं झुकते । राजा तक इनके वशीभूत हो जाते हैं और अन्ततोगत्वा कष्ट भोगते हैं। अतएव जुआ कभी नहीं खेलना चाहिए ।

—०—

(५२)

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्य

हस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।

दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः

शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥

ऋ० १०-३४-९ ॥

अर्थ :- ये जुए के पासे नीचे तख्त पर डाले जाते हैं। परन्तु यह अपना प्रभाव जुआरियों के ऊपर डालते हैं। इन पासों के हाथ नहीं होते परन्तु हाथ वाले जुआरियों को दबा देते है। जुए के तख्ते पर फेंके गये ये पासे अनोखे अङ्गारे हैं जो ठण्डे होते हुए भी हृदय को जलाते रहते हैं।

सारांश यह है कि जुआरी को कभी शान्ति नहीं मिलती। अतएव जुआ नहीं खेलना चाहिये।

—०—

(५३)

जाया तप्यते कितवस्य हीना
माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषा-
मस्तमुप नक्तमेति ॥
ऋ० १०-३४-१० ॥

अर्थ :—जब जुआरी सब कुछ हार कर घर छोड़ कर भाग जाता है, तब उसकी वियुक्त पत्नी भोजनादि न मिलने से दुःखी होती है। इधर उधर भटकते हुए जुआरी बेटे की माता भी तड़पती रहती है। ऋण के भार से दुःखी वह ऋणदाता से डरकर भागता फिरता है। धन को चाहते हुए दूसरों के घरों पर

रात में चोरी के लिये सेंध (नकब) लगाने पहुँच जाता है। परिणामतः नाना प्रकार से कष्ट भोगता है।

—०—

(५४)

न स सखा यो न ददाति सख्ये
सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति
पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥
ऋ० १०-११७-४ ॥

अर्थ :—जो साथ रहने वाले सेवक मित्र को अन्न नहीं देता अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर सहायता नहीं देता वह सच्चा मित्र नहीं है, उपयुक्त आश्रय नहीं है। अतएव उससे सदैव दूर रहना चाहिये तथा पालनकर्त्ता अन्य विरोधी के पास भी जाना चाहिये।

सारांश यह है कि कञ्जूस एवं अनुदार व्यक्ति से उसके स्वजन भी दूर हो जाते हैं इसके विपरीत दानशील एवं उदार व्यक्ति की सभी प्रशंसा करते हैं। अतएव जीवन में उदार दृष्टिकोण रखना चाहिए।

—०—

(५५)

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
ऋ० १०-१२१-४ ॥

अर्थ :—जिस परमेश्वर के अनन्त विस्तार को देखकर हिमाच्छादित हिमालय के शिखर भी मौन आराधना करते हैं। जिसकी महिमा ने महासागरों को मुखर कर दिया है। जिस परमात्मा की भुजाओं ने समस्त ब्रह्माण्ड को आलिंगन कर रखा है अर्थात् अपने में कर रक्खा है, हम सभी उस परमात्मा के चरणों में अपनी हविष अर्पित करते हैं।

—०—

(५६)

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥
ऋ० १०-१४१-६ ॥

अर्थ :—हे प्रभो ! तुम हमारे लिये ज्ञानियों से ज्ञान और यज्ञ को बढ़ाओ तुम देवों के दानार्थ हमें दान हेतु धन प्रदान करो ।

सारांश यह है कि यदि मनुष्य के पास धन हो तो वह उसे शुभ कार्यों में लगावे, हे ईश्वर ! ऐसी प्रेरणा दो ।

—०—

(५७)

असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः ।

यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥

ऋ० १०-१७४-५ ॥

अर्थ :—शत्रुओं का नाश करने वाला, सब प्रकार से अपने राष्ट्र का स्वामी होता हुआ मैं (राजा) प्रजा का सर्वथा पालन करूं और जनता का आदर प्राप्त करूं । अर्थात् सच्चा राजा अथवा अधिकारी वह है जो दुष्टों को दूर रखे उन्हें निरुत्साहित करे और अन्यजनों (सज्जनों) को सम्मानित करे उन्हें सर्वथा उत्साहित करे । ऐसा राजा अथवा अधिकारी सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रशंसा का पात्र होता है ।

—०—

(५८)

न तेषाममा घन नाध्वसु वारणेषु ।

ईशे रिपुरघशंसः ॥

यजु० ३-३२ ॥

अर्थ :—जो ईश्वर की उपासना करने वाले मनुष्य हैं, उनके गृह, मार्ग और चोर डाकू, व्याघ्रादि के निवारण करने वाले संग्रामों में भी पाप रूप कर्मों का कथन करने वाला शत्रु नहीं होता ऐसे धार्मिक विद्वानों तथा ईश्वर को मैं प्राप्त होऊं।

—०—

(५६)

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्मकृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥
यजु० ३-४७ ॥

अर्थ :—जो लोग आलस्य को छोड़कर सत्य, प्रिय एवं मंगलकारिणी वाणी से परस्पर कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपने अभीष्ट कर्म को करते हैं, वे उत्तम गुणों एवं सुखों के लिये करणीय कर्म का अनुष्ठान करके पूर्ण सुख युक्त पद को प्राप्त होते हैं।

—०—

(६०)

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि त दधे।
निहारं च हरासि मे निहारं नि हराणि ते स्वाहा ॥
यजु० ३-५० ॥

अर्थ :—सभी मनुष्यों को पारस्परिक व्यवहार अत्यन्त सच्चाई के साथ करना चाहिये। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति कहता है 'मैं तुम्हें यह वस्तु देता हूँ तुम मुझे अमुक वस्तु दे दो। तुम मेरी यह वस्तु धारण करो, मैं तुम्हारी यह वस्तु धारण करता हूँ। तुम मुझे मोल खरीदने वाली वस्तु लो, मैं तुम्हें तदर्थ मूल्य दूंगा। यह सारा व्यवहार सत्यवाणी से होना चाहिये अन्यथा पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं।

—०—

(६१)

पुन र्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातं सचेमहि ॥
यजु० ३-५५ ॥

अर्थ :—विद्वान् माता पिता व आचार्य की शिक्षा के बिना मनुष्य का जन्म सफल नहीं होता। मनुष्य भी उस शिक्षा के बिना पूर्ण जीवन वा कर्म के संयुक्त करने में समर्थ नहीं हो सकते। अतएव माता पिता व आचार्य प्रतिक्षण पुत्र या शिष्य को अच्छी प्रकार उपदेश देकर उनको शारीरिक तथा आत्मिक बल वाले बनावें।

—०—

(६२)

आप्यायस्व मदिन्तम सोम बिश्वेभिरंशुभिः ।

भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ।

यजु० १२-११४ ॥

अर्थ :—हे आनन्दमय ऐश्वर्यशाली पुरुष ! आप किरणों से युक्त सूर्य के समान सब साधनों से वृद्धि को प्राप्त हों । अत्यधिक सुख देने वाले हमारे मित्र हो कर सुख-वृद्धि करें ।

सारांश यह है कि इस संसार में जो व्यक्ति सबका हित करता है, वह सर्वथा वृद्धि को प्राप्त होता है ईर्ष्या करने वाला नहीं ।

—०—

(६३)

प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।

अन्यांस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽस्मभ्यं शिवोभव ॥

यजु० १७-१५ ॥

अर्थ :—राजा वही है जो न्याय का संवर्धन करे तथा प्रजा के दुःखों को दूर करे । इसी प्रकार विद्वान् वह है जो विद्या से न्याय को पुष्ट करने वाला हो । वह राजा नहीं जो प्रजा को पीड़ा दे,

यह विद्वान् नहीं जो दूसरों को विद्वान् न बनावे। वह प्रजा नहीं जो नीतिमान् राजा की सेवा न करे।

—०—

(६४)

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च
धर्त्ता च विधर्त्ताच्च विधारयः ॥
यजु० १७-८२ ॥

अर्थ :—हे मनुष्यो ! जो सत्य का ज्ञाता है, श्रेष्ठतम व दृढ़ निश्चय से युक्त है, जो सबका आधार है, जो सबको धारण करने वाला तथा धारकों का भी धारक है वह परमात्मा हमारे द्वारा उपास्य है।

अतः हम लोग विद्या, उत्साह सत्सङ्गति और पुरुषार्थ से सत्य एवं विशिष्ट ज्ञान को धारण कर अच्छे स्वभाव वाले बनें। तभी हम सुखी रह सकते हैं और दूसरों को भी सुखी कर सकते हैं।

—०—

(६५)

वसु च मे वसतिश्च मे

कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च ।।

मऽएमश्च मऽइत्या च

मे मतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।

यजु० १८-१५ ।।

अर्थ :—मेरी सम्पत्ति, मेरा निवास, मेरे कर्म, मेरा सामर्थ्य, मेरी प्रत्येक वस्तु, मेरा सुप्रयत्न, मेरी बुद्धि, मेरी वह रीति जिससे व्यवहारों को जानता हूँ तथा मेरी गति (सारे कार्य कलाप) सब कुछ सर्वजन हिताय हो।

अर्थात् जो दूसरों के हित में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं, वे ही व्यक्ति प्रशंसा के पात्र होते हैं।

—o—

(६६)

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् ।

तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ।।

यजु० १८-६२ ।।

अर्थ :—जो मनुष्य अपने धर्माचरण द्वारा निष्कपट होकर विद्या दान करते हैं और उसी प्रकार दूसरों से ग्रहण करते हैं वे सुख को प्राप्त करते हैं।

सारांश यह है कि विद्या के आदान-प्रदान में मनुष्य को किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करना चाहिये।

—०—

(६७)

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा

अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि

भद्रे सौमनसे स्याम ॥

यजु० १६-५० ॥

अर्थ :—जो हमारी सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानने वाले, नवीन ज्ञान का उपदेश करने वाले व अहिंसक तथा परिपक्व विज्ञान युक्त ऐश्वर्यशाली पितृगण हैं, उनके उत्तम एवं धर्मयुक्त कर्म का हम सब अनुकरण करें। जो अधर्मयुक्त कर्म या अवगुण हों, उनका परित्याग करें। ऐसे ही पितृगण अपनी सन्तान के प्रति व्यवहार करें। ऐसी प्रार्थना है।

—०—

(६८)

दृष्ट्वा रुपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापातः ।

अश्रद्धामनृते दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥

यजु० १९-७७ ॥

अर्थ :—प्रजापति ने सब रूप को देखकर उसे दो भागों में विभक्त किया। वे दो भाग हैं सत्य, असत्य। उस प्रजापति ने झूठ में अश्रद्धा को और सत्य में श्रद्धा को रक्खा है।

सारांश यह है कि झूठे व्यवहार करने वाले व्यक्ति के प्रति अश्रद्धा और सत्य व्यवहार करने वाले के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। अतएव सत्य व्यवहार करना चाहिये।

—o—

(६९)

यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चकृमा वयम् ।

वायु र्मा तस्मादेनसो विश्वा मुञ्च त्वंहसः ॥

यजु० २०-१५ ॥

अर्थ :— शिष्य अपने गुरु से कहता है कि हे विद्वन् ! दिन या रात कभी भी हम कुछ अज्ञात अपराध करें तो उन सारे अपराधों एवं दुर्व्यसनों से मुझे वायु के समान सर्वत्र वर्तमान होते हुए पृथक् रखें।

—o—

(७०)

यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽएनांसि चकृमा वयम् ।

सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वा मुञ्चत्वंहसः ॥

यजु० २०-१६ ॥

अर्थ :—जागृतावस्था, स्वप्नावस्था में भी यदि कोई पाप हम करें तो उस समग्र पाप और प्रमाद से सूर्य के समान वर्तमान होते हुए आप मुझको पृथक् करें ।

—०—

(७१)

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् ।

धिया विप्रो अजायत ॥

यजु० २६-१५ ॥

अर्थ :—जो मनुष्य पर्वतों के निकट और नदियों के सङ्गम स्थल पर योगाभ्यास से ईश्वर की व विचारपूर्वक विद्या की उपासना करता है, वह उत्तम बुद्धि तथा कर्म से युक्त विचारशील बुद्धिमान् होता है ।

—०—

(७२)

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त–

मादित्य वर्णं तमसः परस्तात् ।।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति,

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

यजु० ३१-१८ ।।

अर्थ :—परमात्मा महानतम है, आदित्यादि का रचने वाला तथा प्रकाशक है, अन्धकार (अविद्या) से रहित है। उस परमात्मा को जानकर जीव मृत्यु को जीत सकता है अन्यथा नहीं। परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के बिना मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है।

—o—

(७३)

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो

वातितृष्णे बृहस्पति र्मेतद्दधातु

शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।

यजु० ३६-२ ।।

अर्थ :—हे परमात्मन् ! मेरे नेत्र, हृदय, मन बुद्धि एवं इन्द्रियजन्य सभी दोषों (निर्बलताओं) को दूर करो। आप महानतम हैं, हमारा कल्याण करें। हम आप और आप की आज्ञा के सेवन में यथार्थतः तत्पर रहें। आप के बिना हमारा कल्याणकारक कोई नहीं है। आप समस्त भुवनों के पति हैं, हमारा कल्याण करें।

—०—

(७४)

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।

शं नः कुरु प्रजाभ्यः अभयं नः पशुभ्यः ।।

यजु० ३६-२२ ।।

अर्थ :—हे प्रभो ! जहाँ जहाँ भी आपकी गति है, वहाँ वहाँ से हमें भयरहित करो। हमें जो कुछ भी प्रिय है, हमारी सन्तान व हमारे पशु सभी आश्वस्त एवं भयरहित रहें अर्थात् कहीं से भी हमें व हमारे प्रिय जनों को भय न हो।

—०—

(७५)

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः ।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

यजु० ४०-७ ॥

अर्थ :—जिस ज्ञानमय स्थिति में सब प्राणी सभी पदार्थ, जातमात्र आत्मा भी अपने ही हो जाते हैं, उस स्थिति में परमात्मा के एकत्व का साक्षात् करने वाले विशिष्ट ज्ञानी के लिये कौन सा मोह और कौन सा शोक रह जाता है, अर्थात् ऐसे ज्ञानी पुरुष को शोक व मोह आदि नहीं होते ।

—०—

(७६)

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।

वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिरः इन्नु रन्त्यः ॥

सामपूर्वार्चिक ६-३-१३-२ ॥

अर्थ :—हे प्रभो ! तू ही सर्वत्र व्याप्त है क्योंकि तू 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' है । देखो बसन्त की रमणीयता अपार है । ग्रीष्म ऋतु की रमणीयता अपार है । फिर वर्षा ऋतु आती है (सभी

वनस्पतियाँ उगकर पुष्पान्वित एवं फलान्वित होती हैं) इस प्रकार वर्षा, शरद, हेमन्त व शिशिर सभी ऋतुओं की अपार रमणीयता है।

—०—

(७७)

अनुप्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः।

रुचे जनन्त सूर्यम् ॥

सामपूर्वार्चिक ६-२-६ ऋ० ९-२३-२ ॥

अर्थ :—वेद आदेश देता है कि प्रत्येक मनुष्य को मौलिक कार्य करना चाहिये। प्रत्येक प्राणी में नवीन सृजनात्मक क्षमता है।

जो अनुकरण प्रिय होते हैं, वह भौतिक सृजन कभी नहीं कर सकते और कभी सुखी नहीं रह सकते। अपनी क्षमता पर विश्वास रखने वाले जन ही नवीन प्रतिभा से नूतन निर्माण करते हैं। सृजन प्रेरणा के प्रकाश में होता है पुरानी प्रेरणा रूपी दीपक मन्द पड़ गया हो तो अपनी रुचि का सूर्य स्वयं बना लो। अतएव हमें अनुकरणशील न होकर सृजनशील होना चाहिये।

—०—

(७८)

सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत ।

शिशुं नः यज्ञैः परिभूषत श्रिये ।

साम० उत्तरार्चिक ११५७-१ ॥

अर्थ :—हे मित्रो ! समीप बैठो तथा पवित्रात्मा विद्वान् पुरुष की प्रशंसा करो तथा अपने कल्याण के लिये उसे बच्चे के समान पञ्च यज्ञों से प्रसन्न करो ।

—०—

(७६)

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄं पाहि शृणुही गिरः ।

रक्षा तोकमुतत्मना ॥

साम० उत्तरार्चिक १२४६-३ ॥

अर्थ :—हे परमेश्वर ! अजर अमर तू उपकारी मनुष्यों की रक्षा करता है। उनकी स्तुतियों को सुनता है तथा संतति का स्वयं ही पालन करता है।

—०—

(८०)

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ।।
अथर्व० १-१५-१ ।।

अर्थ :—मनुष्यों को चाहिये कि नाव आदि से सामुद्रिक यात्रा, विमानादि से वायुमण्डल में आवागमन के मार्गों को तथा यथायोग्य व्यवहार पक्षी आदि सभी जीवों को एवं वैज्ञानिक ढंग से सभी पदार्थों को अपने उपयोग में लावें। विद्वानों में पूर्ण श्रद्धा और समादर का भाव रक्खें जिससे वे निरुत्साहित न हों और उत्साहपूर्वक व्यवहार करें।

—०—

(८१)

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानपि रक्षतादिदम् ।
अथर्व २-१३-१ ।।

जैसे अग्नि गौ के घृत, काष्ठ आदि हवन सामग्री से प्रज्व-लित होकर हवन रूप में अन्न संस्कार शिल्प प्रयोग आदि में उपयोगी सिद्ध होता है वैसे ही परमेश्वर वेद-विद्या, बुद्धि एवं

अन्न आदि पदार्थों के दान से मनुष्यों पर उपकार करता है। इसी प्रकार मनुष्यों को परस्पर उपकारी होना चाहिये।

—०—

(८२)

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अथर्व २-१५-५ ॥

अर्थ :—सत्य अर्थात् धर्म का विधान, असत्य अर्थात् अधर्म का निषेध यह न्याय के दो प्रधान अङ्ग हैं। इस प्रकार मनुष्य यथा तथ्य समझकर कुमार्ग को छोड़कर सन्मार्ग पर चले तभी उसे स्वर्गिक आनन्द प्राप्त हो सकता है। अन्यथा वह आजन्म दुःखी रहेगा।

—०—

(८३)

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अथर्व० २-१५-६ ॥

अर्थ :—समर्थ, सत्यप्रतिज्ञ मनुष्य पूर्वकाल में विजयी हुए, भविष्य में भी विजयी होंगे। अतएव जो मनुष्य भूत, भविष्य आदि सभी काल में विचारपूर्वक जो कार्य करते हैं वे सर्वदा सुखी रहते हैं।

—०—

(८४)

हतो राजा क्रमीणामुतैषां स्थपति र्हतः ।

हतो हतमाता क्रमि र्हतभ्राता हतस्वसा ॥

अथर्व २-३२ ४ ॥

अर्थ :— मनुष्य अपने दोषों एवं उनके कारणों को उचित ढंग से समझकर उन्हें नष्ट कर दे, जैसे एक अच्छा वैद्य शारीरिक दोषों के प्रमुख एवं गौण कारणों को समझकर रोगी के रोग को दूर करता है।

—•—

(८५)

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति

यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।

द्वौ सन्निषद्य यन्मत्रयेते

राजा तद्वेद वरुणा स्तृतीयः ॥

अथर्व० ४-१६-२ ॥

अर्थ :—मनुष्य का चलना, फिरना, खड़ा होना, दूसरे को ठगना, छिपकर कोई कार्य करना (इस आशय से कि कोई नहीं जानता) दूसरों को कष्ट देना यहां तक कि दो आदमियों की मिलकर की गई गुप्त मन्त्रणा को सर्वश्रेष्ठ राजा परमेश्वर तीसरा होकर जानता है ।

अतएव मनुष्य को कोई भी पाप कर्म नहीं करना चाहिये ।

—०—

(८६)

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।

गोजिद् भूयांसमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित् ।

अथर्व० ७-५०-८ ॥

अर्थ :—हे ईश्वर ! कर्म मेरे दाहिने हाथ में और विजय अर्थात् सफलता मेरे बाएं हाथ में स्थित हो। मैं गौओं (इन्द्रियों), भूमि व गौ आदि उपकारी प्राणियों को जोतने वाला, शीघ्रगामी अश्व रखने वाला, धन एवं तेज को जीतने वाला रहूँ।

सारांश यह है कि जो मनुष्य परमात्मा को ध्यान में रख कर वेद-विहित कर्म करते रहते हैं वे सभी प्रकार की सिद्धि प्राप्त करते हैं। किसी विद्वान् ने बहुत ठीक कहा है—

'धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरें। जे पुरुष उत्तम, अन्त में वे सिद्ध सब कारज करें।'

—o—

(६७)

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेम ममृतं सुखं रथमथजिर्विर्बिदथमा वदासि ।।
अथर्व ८-१-६ ।।

अर्थ :—उत्थान प्रिय मानव की प्रवृत्ति को उत्साहित करते हुए वेद आदेश देता है कि मनुष्य को नित्य सक्रिय रहना चाहिये।

अदम्य जीवट के लिये विधाता ने असाधारण दक्षता दिया है। यदि कभी क्लान्ति प्रतीत हो तो प्रभु के अमृत–आनन्दमय रथ पर आरूढ़ होकर देव यात्रा पूरी करो कभी देह जीर्ण–शीर्ण हो जाय तो ज्ञान की प्रखरता के कारण तुम ज्ञान दान करते हुए विकास के अन्तिम सोपान तक पहुँच सकोगे।

—०—

(८८)

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्र यातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्रः ॥
अथर्व० ८-४-२२ ॥

अर्थ :—मनुष्य के छः महान् शत्रु हैं। ये हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह अभिमान एवं ईर्ष्या। इन पर विजय प्राप्त करना मनुष्य का परम धर्म है। इनमें से जिसका प्रभाव हमारे चित्त में बढ़ जाता है वही हमें उस पशु योनि में ढकेल देता है। काम वासना प्रबल होने पर कोक, क्रोध के प्रबल होने पर भेड़िया लोभ के प्रबल होने पर गृध्र, मोह के प्रबल होने पर उल्लू, अभिमान के प्रबल होने से गरुड़ तथा ईर्ष्या के प्रबल होने पर कुत्त का योनि प्राप्त होती है।

अतएव स्तोता प्रार्थना करता है कि हे परमात्मन् ! हम उल्लू, भेड़िया, कुत्ता, पक्षी, गरुड़ या मोर तथा गीध की चाल को छोड़ दें। हे प्रभो ! इनमें पाई जाने वाली वृत्तियों से हमारी रक्षा करो।

—०—

(८९)

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ।
अथर्व० १९-५३-८ ॥

अर्थ :—उचित समय में तप, काल में ज्येष्ठत्व और काल में ही ज्ञान रक्खा हुआ है । निश्चय ही काल सबका ईश्वर है जो सारी प्रजा को उत्पन्न करने वाले हिरण्यगर्भ का भी पिता है ।

—०—

(९०)

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाऽहम् ॥
अथर्व० ३-१९-२ ॥

अर्थ :–हम स्वराष्ट्र गौरव की रक्षा करने का प्रण लेंगे
राष्ट्र शक्ति संरक्षण–वर्धन के हित तन-मन देंगे
शत्रु-गर्व खण्डित कर देंगे कोटि कोटि बाहू बलवान ।
राष्ट्र यज्ञ की अग्नि शिखा पर जीवन कर देंगे बलिदान ॥

(६१)

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।
अथर्व १२-१-४५ ।।

अर्थ :—हमारा देश नाना प्रक.र की प्रकृति एवं वेश तथा भाषाओं से सुशोभित है। लोगों को नाना प्रकार के धर्मों में विश्वास रखने की स्वतन्त्रता है। भ.रत भूमि कामधेनु के समान हमारी सभी अभीष्ट इच्छाएं पूरा करती है। यहां तक कि समस्त वसुधा तल का हर व्यक्ति उसी से अपना मुंह मांगा वर-दान प्राप्त करता है।

—०—

(६२)

इदमुच्छ्रेयो ऽवसान मागां शिवे
मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु,
न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ।।
अथर्व० १६-१४-१ ।।

अर्थ :—अब तो यही श्रेयस्कर लगता है कि जीवन के सभी संघर्षों का अन्त कर दूं । अब मेरा कल्याण भगवान् की समस्त अन्तरिक्ष व्यापिनी शक्तियाँ स्वयं करें । सारी दिशाएं एवं दिगन्त मेरा मङ्गल करें अर्थात् कहीं पर भी मेरा कोई शत्रु न हो । न मैं किसी से द्वेष करता हूँ और न किसी के द्वेष से भयभीत होता हूँ ।

—०—

(६३)

ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वास्तभिः सदा नः ।।
अथर्व १६-११-५ ।।

अर्थ :—विद्वानों के मध्य जो श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले लोग हैं, पूजनीय, ज्ञानदाता, अक्षय कीर्ति वाले, सत्य धर्म के जानने वाले हैं वे हमें ज्ञान प्रदान करें । हे विद्वानो ! अनेक प्रकार के सुखों को देकर सदा हमारी रक्षा करो ।

—०—

(६४)

यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत्त आयुष्यं भुवत् तत्तें वर्चस्यं भुवत् ।।
अथर्वं १६-२६-४ ।।

अर्थ :—जिस सुवर्ण को ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष जानता है। जिसको विद्वान् बृहस्पति जानता है, जिसको शत्रुनाशक इन्द्र जानता है। हे मनुष्य! वह तेरे लिये आयु तथा तेज को बढ़ाने वाला होवे।

--०—

(९५)

सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि॥
अथर्व० १९-४८ ४॥

अर्थ :- हे रात्रि! वह तू पीछे से, सामने से, ऊपर से नीचे से मेरी रक्षा कर। हे चमक वाली देवि! मेरी रक्षा कर, मुझे सब प्रकार से बचा। हम लोग यहाँ पर तेरी स्तुति करने वाले हैं।

—०—

(९६)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मे ऽपानो ऽयुतो मे व्यानो ऽयुतो ऽहं सर्वः॥
अथर्व १९-५१-१॥

अर्थ :—मैं अनिन्दित होऊं। मेरा आत्मा अनिन्दित हो। मेरा जीवात्मा मेरी आँख, मेरे कान प्रशंसनीय हों, मेरा प्राण, अपान और व्यान वायु अनिन्दित होवें। यहाँ तक कि मेरा सब का सब सर्वथा अनिन्दित होवे।

—०—

(६७)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः

सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।

तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितः,

तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥

अथर्व० १९-५३-१ ॥

अर्थ :—सात रस्सियों वाला, सहस्रों धुरों को चलाने वाला कभी भी जीर्ण न होने वाला, महाबली कालरूपी अश्व चलता रहता है। सब उत्पन्न हुई वस्तुएं उस समय रूपी अश्व (रथ) के चक्र हैं, उस घोड़े पर ज्ञानी और क्रान्तदर्शी लोग ही सवार होते हैं।

—०—

(६८)

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये ।।

अथर्व० १६-६२-१ ।।

अर्थ :—हे परमात्मन् ! मुझे देवों में प्रिय बनाओ, मुझे राजाओं में प्रिय बनाओ, मुझे शूद्रजनों एवं आर्यों में प्रिय बनाओ। मुझे समस्त संसार का प्यारा बनाओ ।

—०—

(६६)

पश्येम शरदः शतम् ।
जीवेम शरदः शतम ।।
बुध्येम शरदः शतम् ।
रोहेम शरदः शतम् ।।
पूषेम शरदः शतम् ।
भवेम शरदः शतम् ।।
भूयेम शरदः शतम् ।
भूयसीः शरदः शतात् ।।

अथर्व १६-६७-१-८ ।।

अर्थ :—हम एक सौ वर्ष तक देखते रहें। हम सौ वर्ष तक जीते रहें। हम सौ वर्ष तक समझते रहें। (अर्थात् हमें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान रहे) हम सौ वर्ष तक चढ़ते रहें (अर्थात् उन्नति करते रहें। हम सौ वर्ष तक पुष्ट होते रहें (अर्थात् स्वस्थ रहें)। हम सौ वर्ष तक बने रहें। हम सौ वर्ष तक शुद्ध रहें (अर्थात् हमारे विचार सदैव शुद्ध रहें। हम सौ वर्षों से भी अधिक देखते, सुनते आदि रहें। यहाँ सौ शब्द जीवन पर्यन्त का द्योतक है।

—०—

(१००)

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।

यदहं गोपतिः स्याम् ॥

अथर्व २०-२७-२ ॥

अर्थ :—हे शक्ति के स्वामी ! यदि मैं धन भूमि आदि का स्वामी होऊँ तो मैं इन मन के ईश, पूरे जितेन्द्रिय मनीषी जन के लिये ही इस धन-शक्ति को देना चाहूँ और उसे ही दूं। ऐसी मेरी मति होवे।

—०—

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

मुद्रक—शक्ति प्रेस, (नहर पुल) कनखल । फोन : ७७